

संताली वाचिक साहित्य में सांस्कृतिक ऐतिहासिक अभिव्यक्ति: आदिम वाचिक परंपरा के संदर्भ में

राज मोहन बास्की¹, डॉ. प्रीति राय²

¹शोधार्थी, हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्विद्यालय, लखनऊ

²सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्विद्यालय, लखनऊ

शोध सार:

संताली भाषा भारत की प्रमुख आदिवासी भाषाओं में से एक है, जो अपनी सजातीय भाषाओं में सर्वाधिक प्रगतिशील और समृद्ध मानी जाती है। यह भाषा न केवल संप्रेषण का माध्यम रही है, बल्कि इसने एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा को भी जन्म दिया है, जिसे संताली समाज ने सदियों से वाचिक रूप में संरक्षित और संवर्धित किया है। संताली भाषा की विशेषता यह है कि इसने अपने साहित्य को लिपिबद्ध किए बिना भी पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखा, जिससे इसकी मौलिकता और सांस्कृतिक आत्मा अक्षुण्ण बनी रही। संताली वाचिक साहित्य में सांस्कृतिक और ऐतिहासिक तत्वों की भरमार है। यह साहित्य न केवल मनोरंजन का साधन रहा है, बल्कि यह ज्ञान, परंपरा, विश्वास और सामाजिक मूल्यों को स्थानांतरित करने का माध्यम भी रहा है। यहाँ लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनृत्यों में जीवंतता और पर्व-त्योहारों की आस्था का समावेश है। इन सभी अभिव्यक्तियों के माध्यम से संतालों की सामूहिक स्मृति, उनकी जीवन शैली, संघर्ष, उल्लास और प्रकृति के प्रति उनका गहरा संबंध सामने आता है। आज जब वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव से कई पारंपरिक भाषाएँ और सांस्कृतिक विरासतें खतरे में हैं, तब संताली भाषा की यह जीवंतता और साहित्य की समृद्ध वाचिक परंपरा एक प्रेरणा स्वरूप है। इसे संरक्षित और बढ़ावा देना न केवल एक भाषा को बचाने का कार्य है, बल्कि इससे जुड़ी एक पूरी सभ्यता और जीवनदर्शन को भी जीवित रखने का प्रयास है।

बीज शब्द: वाचिक साहित्य, वाचिक परंपरा, वाचिकता, मौखिक परंपरा, संताली वाचिक साहित्य, आदिम, आदिम संस्कृति, आदिम वाचिक परंपरा, संस्कृति, संताली संस्कृति।

मूल आलेख:

संताली वाचिक साहित्य आदिम युग से हमारी मन-मस्तिष्क के जिज्ञासा वृत्तियों को मौखिक रूप में शांत करता है और ज्ञान पिपासा की तृप्ति और मस्तिष्क की क्षुधा पूर्ति करता है। जिस प्रकार इस संसार में हर प्राणी अपने आहार

Published: 30 June 2026

DOI: <https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i6.45813>

Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

या अन्न के प्रति लालायित रहता है उसी प्रकार मस्तिष्क भी क्षुधाग्रस्त होता है, जिसका भोजन हमें साहित्य से मिलता है। साहित्य के द्वारा हम अपने अतीत का दर्शन कर सकते हैं। हमारे गौरवपूर्ण संस्कृति और सभ्यता, पूर्वजों के अनुभव, उनके अद्भुत विचारों, प्राचीन रीति-रिवाजों, रहन-सहन और परंपराओं से परिचय प्राप्त करते हैं। सहस्र शताब्दियों से पूर्व हमारे पूर्वजों ने एक सभ्यता का निर्माण किया होगा जिसके अनुरूप वे लोक विश्वास का अनुसरण करने लगे। उनके धार्मिक दशा और दार्शनिक विचार का ज्ञान साहित्य के अध्ययन से हमें प्राप्त होता है। उनके साधारण जीवनयापन में भी आदिम लोक संस्कृति की मान्यता है, वे क्या पीते-खाते या पहनते-ओढ़ते सुख-दुख आदि की व्यावहारिक परिस्थितियाँ का दृश्य इनमें झलकती है। इनके प्राचीन इतिहास की क्रमिक विकास की जानकारी इनका वाचिक साहित्य ही देता है जो कि मौखिक रूप में अभी भी संताल समुदाय के मुख में सदियों से शोभायमान है।

बद्री नारायण जी ने अपनी पुस्तक 'लोक संस्कृति और इतिहास' में लिखा है- "यूँ भी लोक संस्कृति एक ऐतिहासिक संघटना है और लोक संस्कृति का विज्ञान एक ऐतिहासिक अनुशासन है।"¹ इतिहास के सौंदर्य तेजस्वी तत्व कहीं न कहीं लोक में ही सुरक्षित है। आदिम ज्ञान परंपरा, साहित्य, कला के नाना प्रकार स्वरूप, भाषाओं के शब्द भंडार, जीवन के आनंदमय क्षण, पर्वोत्सव, नृत्य, संगीत आदि सभी कुछ लोक में ओत प्रोत है। लोक जीवन में तरह-तरह की धार्मिक सांस्कृतिक मान्यता स्वाभाविक है, यह एक प्रकार का सामाजिक साधना है जो उनकी अभिव्यक्ति और आस्था को प्रदर्शित करता है।

लोक साहित्य के संबंध में डॉ. अमरनाथ लिखते हैं कि- "लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युग की वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिंबित रहता है, जिसका प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा लोक का अपना होता है।"²

लोक साहित्य और वाचिक साहित्य, दोनों ही साहित्य के महत्वपूर्ण अंग हैं और समाज की संस्कृति, परंपराएँ और मूल्य संरक्षित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। हालांकि, ये दोनों शब्द एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, फिर भी इनके बीच कुछ अंतर हैं, जिन्हें समझना आवश्यक है: -

'लोक साहित्य' वह साहित्य है जो आम जनता के द्वारा रचा और प्रसारित किया जाता है। यह साहित्य जनसाधारण के जीवन, विश्वासों, संघर्षों और उनके अनुभवों का प्रतिनिधित्व करता है। लोक साहित्य का उद्देश्य न केवल मनोरंजन करना होता है, बल्कि यह समाज के सांस्कृतिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों को भी प्रस्तुत करता है। लोक साहित्य में लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक गाथा, कहावतें, मुहावरे, लोक नाट्य और लोक नृत्य जैसे विभिन्न रूप शामिल होते हैं।

लोक साहित्य किसी विशेष समाज की सोच, परंपराएँ और आचरण को दर्शाता है। यह सामाजिक जीवन की सच्चाइयों को बिना किसी साहित्यिक साज-सज्जा के व्यक्त करता है, जिससे यह समाज के हर वर्ग के लिए सुलभ

हो जाता है। इस साहित्य में सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है, जिससे सभी लोग इसे आसानी से समझ सकें। लोक साहित्य का कोई विशिष्ट लेखक नहीं होता, बल्कि यह समाज के एक समूह द्वारा रचा जाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है।

‘वाचिक साहित्य’ वह साहित्य है जो मौखिक रूप में प्रसारित किया जाता है। इसका कोई लिखित दस्तावेज रूप नहीं होता। इस साहित्य परंपरा में सिर्फ मौखिक रूप से सुनाई जाने वाली अपने पूरखों से उपहार में प्राप्त अनुकृति स्मृति शामिल होती हैं। जैसे - गीत, कथाएँ, मुहावरे और कहावतें। वाचिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखना और समाज में शिक्षा का प्रसार करना होता है। वाचिक साहित्य का श्रव्य रूप होता है, अर्थात् यह सुनने और सुनाने के माध्यम से फैलता है। वाचिक साहित्य में लोक जीवन, संस्कृति, और परंपराओं का चित्रण होता है। यह साहित्य विशेष रूप से समाज के सरल वर्ग के अनुभवों और विश्वासों का प्रतिनिधित्व करता है। वाचिक साहित्य में अक्सर भावना और लय का प्रयोग किया जाता है, जिससे यह और भी आकर्षक बनता है।

वाचिक साहित्य एक अद्वितीय साहित्यिक धारा है, जो समुदाय की सांस्कृतिक और सामाजिक धरोहर को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्मरण शक्ति पर आधारित यह सरल, सुलभ, और प्रामाणिक होता है, जो विभिन्न आदिवासी समाज के विविध अनुभवों को साझा करने का एक प्रभावी तरीका है। आज भी, वाचिक साहित्य का अस्तित्व और उसका महत्व बना हुआ है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों और आदिवासी समाजों में, जहाँ यह मौखिक परंपराओं के रूप में जीवित रहता है। वाचिक साहित्य आदिवासियों की आदिम ज्ञान परंपरा को प्राचीन काल से प्रतिनिधित्व करती आ रही है।

‘आदिवासी समाज और संस्कृति’ नामक पुस्तक में विनय कुमार शर्मा जी का कथन है- “आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला-माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलतः मौखिक रही।”³ इनके जीवन के अभिन्न अंग माने जाने वाले गीत, कथा, नृत्य आदि उनके सहजीवी ही थे। आदिवासी समाज साहित्य लेखन की दुनिया में विलंब से क्यों आया, इसके पीछे कई ऐतिहासिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक कारण हैं। आदिवासी समाज का साहित्य प्राचीन काल से वाचिक रूप में प्रचलित था, और यह एक निश्चित प्रकार की जीवनशैली और सामाजिक संरचना से जुड़ा हुआ अभ्यास था। लेकिन जब हम आदिवासी समाज के साहित्यिक लेखन की आधुनिक दुनिया में विलंब की बात करते हैं, तो इसके कारण विभिन्न दृष्टिकोणों से देखे जा सकते हैं। आदिवासी लेखिका वंदना टेटे का कथन है- “हम जानते हैं कि लिखित दुनिया के आने तक आदिवासियों के बीच ‘साहित्य’जैसी कोई अवधारणा नहीं थी, जैसा कि गैर-आदिवासी दुनिया में है। हम पहले ही कह चुके हैं, गैर आदिवासी विश्व जिस तरह से शब्दों के द्वारा रचे गए कलात्मक बौद्धिक व कल्पनाशील लेखन को साहित्य कहता है, वाचिक आदिवासी परंपरा जिसे न्यूगी वा थ्योंगो ‘वाचिकता’(आरेचर) कहते हैं, और हम ‘पुरखा साहित्य’की संज्ञा देते हैं, वह बिल्कुल भिन्न है।”⁴

आधुनिक काल में साहित्य लेखन की दुनिया में आदिवासी समुदाय को विवशतावश प्रवेश करना पड़ा है, क्योंकि

भारतीय प्रायद्वीप में अन्य समुदायों के साथ तालमेल एवं सामंजस्य रखना कठिन हो जाता। इसके पूर्व बहुत से वजह या अवधारणा हो सकते हैं कुछ विद्वानों का मानना है कि लिखित यानि ताड़ पत्र याकागजी रूप में आने से उनकी चीजों को बाहरी समाज गलत उपयोग करेगा। उनके पास जो शाश्वत ज्ञान का भंडार है वह अगर दूसरे समूह में प्रसारित हो जाए तो उन्हें सांस्कृतिक क्षतिवृत्ति का भय रहता था। अतः आदिवासियों ने अपने समस्त आदिम विश्वासों को अपने मुख में संरक्षित कर लिया। और एक मत का ये भी मानना है कि वे सभ्य थे; उनको भूत-भविष्य, ज्ञान-विज्ञान, कला, तकनीकी ज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल, कृषि, पर्यावरण, दर्शन, संवाद, संस्कार, नैतिकता और धर्म आदि से परिपूर्ण थे; पश्चिम से आए आक्रांताओं के द्वारा अलग - अलग कालखंड में आक्रमण, विरोध, संघर्ष और जय-पराजय की प्रक्रिया में आदिवासियों को जूझना पड़ा, जिससे वे अपने मूल स्थानों को छोड़ दिए। इन तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि उनका एक परिपूर्ण सभ्यता रहा होगा और इस ऐतिहासिक वृत्तांत को पीढ़ी दर पीढ़ी स्मरण शक्ति के द्वारा आदिवासी पुरखाओं ने वाचिक रूप में जीवित रखा। “सामाजिक रीति-रिवाज के कारण ही संताल जनजाति विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति सिन्धु-सभ्यता का निर्माण करने में सफल हो सके थे | इसकी चर्चा संताली संस्कृति का वाचिक इतिहास ‘काराम बिनती’ में की गई है।”⁵ संताली वाचिक परंपरा में चंपा के गौरवशाली अतीत का स्मरण आज भी हर संताल के अंतःकरण में विद्यमान है जिसे वे अपने लोक गीतों में व्यक्त करते हैं-

चाय-चंपा गाड़ दो लिलीबिची

बादोली कोंयन्डा लिखोन गोड़होन

दाया गे चंपा बादोली कोंयडा

दाया गे गाड़ बोन बगियादा।”⁶

हिन्दी अनुवाद -

चाय-चंपा गढ़ आभूषित एवं सुशोभित था

बादोली कोंयन्डा गढ़ लेखन एवं कलाओं से अलंकृत था

हाय चंपा बादोली कोंयडा

हाय हमलोगों ने अपने प्रिय गढ़ छोड़ दिया।

अर्थात् चाय चंपा नामक गढ़ में संतालों के स्वर्णिम इतिहास की जानकारी मिलती है। यहाँ वे इस स्थान पर स्थायी रूप से निवासी हो गए थे, सुनियोजित रूप से शासन व्यवस्था चलाते थे। व्यापार, वाणिज्य, लेखन कलाओं आदि से परिपूर्ण थे। अंत में किसी कारणवश उस स्थान को छोड़ना पड़ जाता है। डॉ. रतन हेम्ब्रम लिखते हैं- “ऐतिहासिक सामग्री का खजाना लोकगीत ही है। लोकगीत में ऐतिहासिक प्रसंग अधिक मिलते हैं। लोकगीतों की सहायता से इतिहास में तत्कालीन स्थिति के दर्शन होते हैं।” फिर वहीं अश्विनी कुमार पंकज लिखते हैं- “आदिवासी पुरखा गीतों

और कथाओं की प्रासंगिकता, जो आदिवासियों के वाचिक इतिहास के सबसे प्राथमिक स्रोत है, मानव समाज के आधे-अधूरे और एकतरफा ज्ञान-विज्ञान को समग्रता प्रदान करने में है। प्रागैतिहासिक इतिहास, प्राचीन इतिहास और आधुनिक इतिहास की उन पहेलियों को सुलझाने में है जो आज तक अनसुलझे हैं।”⁸

कोलेयान गुरु के द्वारा बताए गए मौखिक वृत्तांत में एल. ओ. स्क्रैफ्सरुड ने ‘होड़ कोरेन मारे हापड़ाम् कोवाक् काथा’ नामक पुस्तक में संकलित किया है। संतालो के उद्भव एवं विकास के बारे में उल्लेख इन गीतों में मिलता है-

“हिहिड़ी पिपिड़ी रे बोन् जानाम् लेन्

खोज कामान् रे बोन खोज् लेन्

हाराराता रे बोन् हारा लेन्

सासांड बेडा रे बोन जात् ऐना हो।”⁹

इस लोकगीत का भावार्थ यह है कि हिहिड़ी पिपिड़ी नामक स्थान में हमारा जन्म हुआ, खोज कामान् नामक स्थान में हमारा खोज हुआ, हाराराता नामक स्थान में निवास किए एवं पोषण हुआ और सासांड बेडा नामक स्थान में संताल जाति गोत्र में विभाजित हुए। ये सभी स्थान प्राचीन जगहों के सूचक हैं; हिहिड़ी पिपिड़ी संतालों का उद्भव स्थान रहा होगा, खोज कामान् में एक जाति के रूप में एकत्रित हुए होंगे, हाराराता में निवास करने के साथ-साथ पले-बढ़े फिर वे सासांड बेडा पहुँचे जहाँ उनका जाति विभाजन हुआ। ‘सासांड’ शब्द का अर्थ पीला होता है, पीले रंग को भी इसी अर्थ में व्यक्त किया जाता है, एवं ‘बेडा’ शब्द का अर्थ नदी किनारे समतल भूमि का बोध होता है। सासांड बेडा से ऐसे स्थान का बोध होता है जो किसी नदी के किनारे या तटीय क्षेत्र पर स्थित है एवं वहाँ की मिट्टी का रंग पीला है। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से ये स्थान अभी भी मौजूद हैं। सासांड बेडा के पश्चात् वे जारपी देश पहुँचते हैं, इस यात्रा का उल्लेख इन गीतों में विद्यमान है।

“जारपी दिसोम खोनाक् इजदो

सिंजदुवर, बाँही दुवर

दिसोम होड़ को नुडूको काना।”¹⁰

सासांड बेडा के बाद वे जारपी दिसोम(जारपी देश) नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ कुछ समय रहने के उपरांत वे उस जगह को छोड़कर आगे बढ़े। जंगल से गुजरने के क्रम में वे एक बड़े पहाड़ के पास पहुँचे, जिसे पार करने में बहुत कठिनाई हो रही थी। वे उसे पार करने के लिए रास्ता ढूँढते-ढूँढते थक गए। पहाड़ में रास्ता नहीं मिलने पर उन्हें आशंका हुई, कि पहाड़ के देवता ने उनका रास्ता रोक रखा है। अतः वे मारांड बुरु से प्रार्थना किए कि उनको राह दिखाए एवं उन्होंने प्रण लिया उनकी पूजा हमेशा किया करेंगे। मारांड बुरु से प्रार्थना करने पर उन्हें अगली सुबह, उस पहाड़ में एक रास्ता मिला इसके उपरांत वे पहाड़ पार कर सके। लोकगीत में सिंजदुवर का तात्पर्य है, कि प्रवेश द्वार मिलने पर उन्हें सूर्य दिखा इस कारण इस प्रवेश स्थल को यह नाम दिया गया। इस स्थल से यह प्रमाणित होता

है कि वे सूर्य कि दिशा यानि पूर्व दिशा की ओर बढ़ रहे थे। बाँही दुवर से तात्पर्य निकास के रास्ते से है। चंपा में जब वे स्थायी रूप निवास किए तो इन्हीं रास्तों से वे अन्य देशों में आवागमन करते थे। इस तथ्य का उल्लेख संताली लोक साहित्य(सान्ताड़ी होड़ सॉवहेत) में मिलता है- “बताया जाता है कि ये सिज ओत(भारत) में प्रवेश करने के लिए दो प्रवेश द्वार थे। उन प्रवेश द्वार को सिज् दुवर/खोल द्वार एवं बाँही दुवर के नाम से जाना जाता था। अब इन प्रवेश द्वारों को खोईबार पास और बुलान पास के नाम से जाना जाता है। इन्हीं प्रवेश द्वारों के जरिए अन्य देशों के साथ व्यापार और वाणिज्य के लिए आवागमन किया जाता था।”¹¹

“वाचिकता के रूप में संरक्षित, व्याहत् और अविच्छिन्न रूप से निरंतर प्रवाहित इतिहास बताता है कि आदिवासी भाषा, संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला, कारीगरी आदि के बल पर ही सभ्यताओं की नींव रखी गई और वे फले - फूले। एक ही खूंट से पैदा होने के बावजूद जिस मूल सहजीवी दर्शन और वाचिकता को उन्होंने छोड़ दिया, आदिवासियों ने उसे आज तक अपनाए रखा है। वह मूल जीवन-दर्शन, ज्ञान, इतिहास सबकुछ आदिवासियों के मौखिक अर्थात् वाचिकता(ऑरेचर) में समाहित है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुरखा कथाओं, गाथाओं और गीतों के माध्यम से हस्तांतरित होते आ रहे है। न सिर्फ हस्तांतरित हुए हैं, बल्कि उसी में सुरक्षित और संरक्षित भी रहे है।”¹²

संताली वाचिक साहित्य में आदिम संस्कृतियों का विपुल भंडार है। लोकगीत, लोककथाएं, लोकनृत्य, पर्व - त्योहार, अनुष्ठान आदि समस्त संताल जनमानस में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन सभी बिंदुओं पर सांस्कृतिक परंपरा, जीवन दर्शन, रीति - नीति स्थानांतरण, प्रवासन आदि लोक सांस्कृतिक अध्ययन कर इनके जीवन के मूलभूत तत्वों को ढूँढा जा सकता है। साहित्य और संस्कृति में अन्तःसंबंध करते हमें यह समझना चाहिए कि वाचिक साहित्य की समस्त विधाएं आदिम संस्कृति से जुड़ी हुई होती है - होड़ सेरेज (लोक गीत), होड़ कथा(लोक कथा), होड़ बिनती(लोक गाथा), होड़ ऐनेचू(लोक नृत्य), गापालमराव (वार्ताएं), मेनकाथा(लोकोक्तियां), भेंताकाथा(मुहावरे) ये सभी आदिम संताली वाचिक संस्कृति के बिंदु है। संताल समुदाय का संस्कृति का क्षेत्र-विस्तार अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। आदिम संस्कृति मानव जीवन के समस्त अंगों से संबंधित होने के अतिरिक्त, उसके वाचिक साहित्य को आत्मसात् कर लिया है। लोक संस्कृति और लोकसाहित्य के विषय पर कृष्णदेव उपाध्याय का कथन है- “लोक साहित्य की समस्त विधाएं भी लोक संस्कृति में अन्तर्भूत होती है। लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नाट्य, लोक सुभाषित अर्थात् लोकोक्तियां, पहेलियाँ, मुहावरे तथा सूक्तियां आदि भी लोक संस्कृति के अध्ययन के विषय है।”¹³

संताली अपनी सजातीय भाषाओं में सर्वाधिक प्रोन्नत और प्रगतिशील है। इन्होंने अपना सांस्कृतिक इतिहासों को अपने मुखों पर युगों-युगों से वर्तमान समय तक मौखिक परंपरा के रूप में संजो कर रखा है। इस मौखिक परंपरा के अंतर्गत लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, आख्यान आदि ऐतिहासिक तत्वों के कोश के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह संतालों के आदि पूर्वज या पुरखों के द्वारा नदी के सतत धारा के समान आदिकाल से ही संताल जनों के मुख में प्रवाह हो रहा है।

भारत में रेव. जर्मिया फिलिप्स ने सर्वप्रथम संतालों का वाचिक परंपरा की संक्षिप्त भूमिका के रूप में लेखन का कार्य किया। संताली साहित्यकार डॉ. डोमन साहू समीर ने माना है - “संताली युगों से केवल वाचिक या बोलचाल की बोली के रूप में जीवित रहती आई है। इस बोली (भाषा) को सबसे पहले 1845 - 50 ई. के आसपास उड़ीसा में रहने वाले रेव. जर्मिया फिलिप्स नामक एक विदेशी पादरी साहब ने लिपिबद्ध किया था। संक्षिप्त संताली व्याकरण और शब्दावली विषयक ‘एन इंट्रोडक्शन टू दि संताली लैंग्वेज’ नामक उनकी पुस्तक का प्रकाशन 1852 ई. में हुआ था।”¹⁴

जे. फिलिप्स ने संताली भाषा को सीखा उनके शब्द-भंडारों का संग्रह किया, विदेशी लोगों को यह भाषा समझने में कठिनाई न हो उसके लिए संताली व्याकरण तैयार किया और उनके संस्कृतियों और परंपराओं को समझने के लिए वाचिक ज्ञान प्रणाली में निहित बुनियादी तत्वों को संग्रहित किया।

“इन तथाकथित आदिम जमातों के पास अपूर्व लोकसाहित्य का खजाना सुरक्षित है, जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी इन्होंने वाचिक परंपरा में जिन्दा रखा। लगभग सौ साल पहले इन्होंने लिखना शुरू किया। यह इनका संगठित सामूहिक जीवन ही था, जिसने इनके साहित्य को जिन्दा ही नहीं रखा बल्कि समयानुसार उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ा भी। खोज करने पर इनकी जीवन शैलियों, पर्वों, उत्सवों, अनुष्ठानों, मंत्रों, एवं लोकथाओं और लोकगीतों से पूरा का पूरा इतिहास मिल सकता है, जिसका अभाव तथाकथित भारतीय संस्कृति के साहित्य में रहा है।” संताल को समग्रता से जानने समझने के लिए हमें उनका इतिहास को समझना होगा। सृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास से लेकर मानव(होड़/संताल) के उत्पत्ति एवं विकास के संबंध में ‘काराम बिनती’ के लोकगीत प्रचलित है। कई जनसामान्य लोकगीत भी है, जिसका व्यवहार संताल जनमानस में किया जाता है। एक लोकगीत प्रस्तुत है ‘दोड’ राग की शैली में-

जोला जोला ताला रे..

मराड जोला ताला रे।

काराम बुटा रे.. सिरम दान्दी रे..

चेड़े होपोन.....

नुकीन गेचो हो हांस-हाँसिल चेड़े दो

आद मानेवा रेन ऐंगा आपा।”¹⁵

हिंदी अनुवाद -

सागर - सागर के मध्य में

विशाल सागर के मध्य में

काराम वृक्ष के नीचे.. सिरम दान्दी (एक प्रकार का घास का घोंसला) में..

पक्षी के मानव शिशु..

यही दो हाँस-हाँसिल पक्षी है, जो

आदिम मानव के माँ बाबा है।

अर्थात् ये पृथ्वी के प्रारंभिक अवस्थाओं के बारे में बताते हैं, प्रारंभ में जल ही जल था यहाँ जोला का अर्थ सागर से है यहाँ कई सागरों के मध्य विशाल सागर यानि 'महा सागर' था काराम वृक्ष के नीचे सिरम दान्दी में पक्षियों के अंडो से दो मानव शिशु का जन्म हुआ यही दो पक्षी है: हाँस और हाँसिल जो संताल आदि पूर्वज पिलचू हाड़ाम-पिलचू बुढ़ी के माँ बाबा संतालो के पूर्वजों या पुरखा के अनुसार हाँस-हाँसिल (हंस-हंसिनी) पक्षियों ने दो अंडा दिया, उस अंडे से दो मानवों का नवसृजन होता है पुरुष 'पिलचू हाड़ाम' कहलाता है और स्त्री 'पिलचू बुढ़ी' "यह ध्यान रखने वाली बात है कि आदिवासी पूर्वजों में से अधिकांश का जन्म या तो पक्षियों के अंडो से, किसी स्त्री से, पहाड़-पत्थरों के ताल से या फिर धरती से हुआ है। किसी का जन्म अस्वाभाविक, अप्राकृतिक और अलौकिक रूप में नहीं हुआ है। सभी आदिवासी समुदाय के वाचिक कथाओं में स्त्रियों और पुरुषों का जन्म साथ-साथ हुआ है।" और एक लोकगीत का वर्णन है, दासांय राग की शैली में, दासांय शैली में हाय-हाय शब्द बार-बार पुनरावृत्ति होती है-

हाय हाय जालापुरी रे

हाय हाय दाल जानाम एन

हाय हाय दाल चेतान रे

हाय हाय काराम जानाम एन

हाय हाय काराम बुटा रे

हाय हाय सिरम जानाम एन

हाय हाय सिरम दान्दी रे

हाय हाय हाँस-हाँसलीचेड़े दो किन तुकावकादा

हाय हाय दू से लाय याय बेन बापू ठाकुर तिज

हाय हाय सिरम दान्दी रे

हाय हाय हाँस-हाँसलि चेड़े दो किन बिलीयाकादा

हाय हाय चेड़े बिली खोन किन बुसाइकान

हाय हाय लाय याय बेन बापू ठाकुर तिज।"¹⁶

हिन्दी अनुवाद -

हाय हाय जालापूरी में
हाय हाय शैवाल उत्पन्न हुआ
हाय हाय शैवाल के ऊपर
हाय हाय काराम वृक्ष उत्पन्न हुआ
हाय हाय काराम वृक्ष के निचे
हाय हाय सिरम घास उत्पन्न हुआ
हाय हाय सिरम दान्दी (सिरम घास के घोंसले) में
हाय हाय हाँस - हाँसली पक्षियों ने घोंसला बनाया है
हाय हाय जाकर उनको बताइए उनको
हाय हाय बाबा ठाकुर मेरे
हाय हाय सिरम दान्दी में
हाय हाय हाँस - हाँसली पक्षियों ने दो अंडे दिए है
हाय हाय पंक्षियों के अंडे से मानव
हाय हाय मानव का नवसृजन हुआ है
हाय हाय जाकर बताइए मेरे बाबा ठाकुर को।

अर्थात् विशाल महासागर में 'दाल' (शैवाल) विकसित होता है, उस शैवाल के ऊपर करम वृक्ष विकसित होता है, उस करम वृक्ष के नीचे 'सिरम दान्दी' (एक प्रकार का घास) उगता है, उस सिरम दान्दी में दोनों पंक्षियों ने घोंसला बनाया है। जाइए और मेरे बाबा ठाकुर को खबर दीजिए, हाँस-हाँसली पंक्षियों ने अंडे दिए है और अंडे से आदिम मानव का नवसृजन हुआ है। ठाकुर जी के आने के तदुपरांत उन दो नव मानव को जाहेर आयो के द्वारा आतनाक साकाम (आसन के पत्ते) में लेटाया जाता है। गाँवों में अभी भी यह देखने को मिलता है जब नवजात शिशु का जन्म होता है तो सबसे पहले आसन के पत्तों में लेटाया जाता है। संताल समुदाय आसन के पेड़ को 'जाहेर आयो' (माँ) के रूप में श्रद्धा एवं प्रेम प्रकट करते है। मानव उत्पत्ति एक जटिल और दिलचस्प विषय है, विद्वानों ने मानव उत्पत्ति संबंधित कई वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखे हैं; लेकिन इन सभी तथ्यों के परे आदिवासी संताल समुदायों ने अपनी वाचिक परंपरा में धरती का सृजन एवं मानव का उत्पत्ति संबंधी तथ्यों को प्रस्तुत किया है। प्रकृति और मानव के मध्य जुड़े पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र मानव विकास के साथ-साथ स्वच्छंदतापूर्वक निर्वहन करते है। जो संस्कृति, समाज और भौतिक जीवन की एक मूल्यवान परंपरा विकसित करती है।

निष्कर्ष:

इस तरह हम समझ सकते हैं कि संताली वाचिक साहित्य केवल मौखिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि एक सम्पूर्ण सभ्यता और संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है। यह साहित्य संताल समुदाय के अनुभवों, संघर्षों, आस्थाओं, रीति-रिवाजों, सामाजिक संरचनाओं और प्रकृति से ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक गहरे सम्बन्ध को अपने भीतर समेटे हुए है। वास्तव में, संताली वाचिक साहित्य के हृदय में आदिम संस्कृतियों का विपुल भंडार निहित है। इसमें उस समाज के जीवन के हर पहलू की झलक मिलती है- जैसे कृषि पर आधारित जीवन, प्रकृति की पूजा, सामाजिक संगठन, विवाह परंपराएं, तात्कालिक ज्ञान और लोकविश्वास। यह साहित्य केवल कहानियाँ या गीत नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत इतिहास है जो संताली समाज के स्वर्णिम अतीत को अभिव्यक्त करता है। आज जब वैश्वीकरण और आधुनिकता की आँधी में अनेक जनजातीय भाषाएँ और परम्पराएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं, वहीं संताली वाचिक साहित्य न केवल अपने अस्तित्व को बनाये हुए है, बल्कि यह सांस्कृतिक पुनर्जागरण का स्रोत भी बन रहा है।

सन्दर्भ :

1. बट्टी नारायण, लोक संस्कृति और इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नई दिल्ली, पटना, तृतीय संस्करण, 2019, पृष्ठ 18
2. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी भाषा की परिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 316
3. विनय कुमार शर्मा, आदिवासी समाज एवं संस्कृति, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2024, पृष्ठ 160
4. वंदना टेटे, वाचिकता: आदिवासी दर्शन, साहित्य और सौंदर्यबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ 34
5. डॉ. विनय कुमार, संताली भाषा, लोकगीत एवं नृत्य, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2014, पृष्ठ सं 58
6. संताली लोकगीत (संताली होड़ सेरेंज)
7. डॉ. रतन हेम्रम, संताली लोकगीतों में साहित्य और संस्कृति, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2016, पृष्ठ 453
8. अश्विनी कुमार पंकज, भारत का वाचिक आदिवासी इतिहास, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, 2022, पृष्ठ 35
9. एल.ओ.स्क्रैफ्सरुड & कोलेयान गुरु, होड़ कोरेन मारे हापड़ाम कोवाक काथा, डायमंड आर्ट प्रेस, कोलकाता, 1887, पृष्ठ 8
10. एल.ओ.स्क्रैफ्सरुड & कोलेयान गुरु, होड़ कोरेन मारे हापड़ाम कोवाक काथा, डायमंड आर्ट प्रेस, कोलकाता, 1887, पृष्ठ 9

11. प्रो. कृष्ण चन्द्र टुडू, संताली लोक साहित्य(सान्ताड़ी होड़ सॉवहेत), झारखण्ड जनजातीय शोध संस्थान,राँची,कल्याण विभाग झारखण्ड सरकार, 2012,पृष्ठ सं.- 409
12. वंदना टेटे, वाचिकता:आदिवासी दर्शन, साहित्य और सौंदर्यबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,नई दिल्ली,2023, पृष्ठ 117
13. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, तृतीय संस्करण 2024, पृष्ठ 16
14. सं. सुधीर पाल, झारखंड इनसाइक्लोपीडिया(खंड-4): मांदर की धमक और गुलईचि की खुशबू, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 173
15. सं. विशाला शर्मा एवं दत्ता कोल्हारे, आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, एवन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 24
16. संताली लोकगीत (संताली होड़ सेरेंज)
17. अश्विनी कुमार पंकज, भारत का वाचिक आदिवासी इतिहास, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन,राँची, 2022, पृष्ठ 79
18. संताली लोकगीत (संताली होड़ सेरेंज)